(४) (१)

(४) चतुर्थी कला- चतुःजटि मणिमाला-६४- पूर्वपीठिका

(४-१) ऋग्वेदसंहिता (वाङ्मयी-) (१)-

१ ऋग्वेदसंहिता- १० मंण्डलों में हरएक मण्डलके मंत्रोंके ऋषि देवता और
दाशतयी- दशमण्डल संहिता- ऋङ् मन्त्रात्मिका वाङ्मयी-
छन्द इनकी याद्दी, अनुवाक- सूक्त- मन्त्रोंकी संख्या-
शताचिमण्डल- माध्यम- वैश्वामित्र- वामदेव्य- आत्रेय भारद्वाज वासिष्ठ प्रागाथ पावमान्य- क्षुद्रसूक्त महासूक्त
पाठक्रम- संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ- प्रकृतिपाठः, "जटा- माला- शिखा, रेखा ध्वज- दण्ड- रथः, घनपाठः" यह विकृतिपाठ, वगैरह

(४-२) "वस्तुतत्त्व और- विज्ञान" (२)

२ ऋग्वेद- मन्त्रोंके देवतादि वस्तुओंका तत्त्व ज्ञान- और उनके विज्ञानके लिए साधन वगैरह विषयोंका समर्थन ॥
+ वाक् और वस्तुके अन्योन्य जन्यका तत्त्वविज्ञान

(४-३) कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता- (वाङ्मय) १-)

३ (१) यजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता - यजुर्मन्त्रोंके अनुवाक- अध्याय (७) काण्डोंका विभाग, बीच बीचमें ऋङ्मंत्रों का पाठ। और ब्राह्मण भागका पाठ। सारस्वतपाठ क्रममें विषयोंका अनुक्रमः, पदपाठ वगैरह प्रकृतिपाठ, और- जटा माला वगैरह विकृतिपाठ, तैत्तिरीयमें पांच प्रकारका वर्णक्रम,

(२) मैत्रायणी संहिता में मंत्र और ब्राह्मण भागोंका साथ ही पाठका क्रम,

(३) कठशाखामें- सर्वानुदात्तस्वरसहितपाठ और अनुक्रम-

(४) कपिष्ठलकठमें विशेष

(४-४) कृष्ण यजुर्वेदमें (वस्तुतत्त्व- विज्ञान) २)

४ (१) कृष्णयजुर्वेदमें यज्ञीयसंस्थादि वस्तुका ज्ञान, और उनकी देवता वगैरह विषयोंका विचार, यज्ञकी अनुष्ठानपद्धतिका समर्थन, मैत्रायणी और कठ- कपिष्ठलकठशाखाकेभी उसी प्रकार विचार

(४-५) (२) मूलयजुर्वेद संहिता (कण्डिकेय) (वाङ्मय १)

५ मूलयजुर्वेदके - पांच काण्डोंके पांच ऋषि - "प्रजापति-सोम, अग्नि विश्वेदेव, स्वयम्भु", ये यजुर्मंत्रोंके ऋषि है, वहां बीच बीच में पठित ऋड्मन्त्रोंके ऋषि ऋग्वेदमेंही दिखाए हुए है, यह तै. ब्राह्मणमेंही माने गए हैं, पर भी केवल काण्डऋषिका ग्रहण भी करसकते हैं,

यज्ञादि विनियोगके अनुसार अनुषङ्गके बिना पूरा मंत्रोंका ही पाठक्रम,

पठ पाठ वगैरह समानही है,

(४-६) मूलयजुर्वेदका - वस्तुतत्त्व विज्ञान - (२)

६ - यहां पर बोधायनादि आचार्यों के यज्ञादि तत्त्वोमें शास्त्रीय दृष्टिका विचारविनिमय, (पांच काण्डों के विभागमें उसका वैशिष्ट्य,

कांठों के अध्ययनमें पांच कांड व्रतोंका अनुष्ठान का तात्त्विक भाव, वगैरह,

(४-७-) शुक्लयजुर्वेदसंहिता ।। वाङ्मय (१)

७ शुक्लयजुर्वेद संहितामें कण्डिका विभाग - उसकण्डिकामें, अनेक यजुर्मंत्रोंका समावेश - ४० अध्याय "द्वे सहस्रे शते न्यूने - १९०० एकहजारनौसोकण्डिकाएं हैं,

हस्त स्वरसहित पाठ का वैशिष्ट्य - उनमें हस्त मुद्रादि चिन्होंका स्वरूप - न्यास, न्युब्ज, वगैरह - बिना अनुषङ्ग से पूरा मंत्रोंका पाठकी पद्धति - ब्राह्मणभागसे संकर राहित्य, अत एव शुक्ल ब. याज्ञवल्क्यसे प्राप्त,

८ (४-८) वस्तुतत्त्व विज्ञान - (२)

याज्ञवल्क्यकी दृष्टिसे इसमें तात्त्विक भावका वैशिष्ट्य, यज्ञादि अनुष्ठानमें सौलभ्य, अर्थज्ञान में भी कुछ विशेष सहायता,

(४-९) सामवेदसंहिता (वाङ्मय-१)

९ सामवेदसंहिता- पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक- ग्रामेगेयं, अरण्येगेयम्
(प्रकृतिपाठः विकृतिपाठः)
ऐसे दो विभाग हैं। उनमें "अग्नि-इन्द्र-सोम वगैरह देवताओं के- गायत्री
अनुष्टुप्- त्रिष्टुप्- वगैरह छन्दों के मंत्रोंकी अनुक्रमसे योजना॥
उन मंत्रों के ऋग्वेदमें और और ऋषि हैं, साममें और और ऋषि हैं,
इसकाकारण उस सामगानका ऋषि यहां बताया गयाहै,
काण्डों में मंत्रोंकी संख्या, और एक मन्त्रके अनेक गायनों की संख्या वगैरह,

(४-१०) साममें वस्तुतत्त्व विज्ञान (२)

१० मंत्रोक्त देवताओंको उस गायन में सम्बन्ध का ज्ञान
(१) सेतुगान - "अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य"॰ अहमन्नमन्नमदन्तमद्मि॥"
(२) "अग्निरस्मि जन्मना जातवेदाः॰ अजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम्"॥
(३) "इन्द्र क्रतुं न आभर॰- जीवा ज्योतिरशीमहि॥
इन मंत्रों में जो तात्त्विक भावका विज्ञान छिपा हुआ है उसका विशिष्ट ज्ञान समता

(४-११) अथर्व वेद- (वाङ्मय)(१)

११ "ये त्रिषप्ताः परियन्ति॰ यह मेधाजनन सूक्त ही पहला है। ४ मंत्रका है। ऋषि
अथर्वा- वाचस्पति देवता- अनुष्टुप् छन्द है,
"मणि - उच्छिष्ट- स्कम्भ, ब्राह्म वगैरह सूक्तों में- मंत्रसंख्या ऋषि देवता छन्द।
पृथिवी सूक्त मं.६३, "सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति॥"
ब्रह्मचारी सूक्त काल सूक्त प्राण सूक्त वगैरह.

(४-१२) -अथर्वमें वस्तु तत्त्वविज्ञान- (२)

(आया है,
१२ उच्छिष्ट वगैरह सूक्तों में वाच्य वस्तु पर ब्रह्म ही है, अतः ब्रह्मवेद नाम-
"ऋचः सामानि सर्वाणि छन्दांसि च यजूंषि च। उच्छिष्टात् तस्माद्जज्ञिरे॰॥"
यह इतर वेदों में "तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" यह एक ही
वस्तु है, पृथिवी सूक्तमें सत्यं बृहदृतम्॰ वगैरह पृथिवीका धारक है। वह
"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्" धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।
वह धर्म ही विश्वका आधार है इत्यादि

(४-१३) ऋग्वेद ब्राह्मण ग्रन्थ- वाङ्मय (१)

१३ ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण- इसमें ८ पंचिकाएं हैं, हर एक पञ्चिकामें ५-५ अध्याय हैं।
कुल ४० अध्याय हैं, इनमें खण्डकी संख्या कमज्यादा है, यह केवल गद्यरूप हैं;
इसमें स्वर नहीं है, इस ब्राह्मणका पाठ एकश्रुतिसे दंडायमान किया जाता है,
ऋग्वेदसंहिताका प्रारम्भ "अग्निमीळे पुरोहितम्" अग्निशब्दसे किया गया है।
इस ब्राह्मणमें "अग्निर्वै देवानामवमः" ऐसा ~~किया~~ है,
ऐ. आरण्यकमें ५ आरण्य है। "अथ महाव्रतम्" इस वाक्यसे हुआ है। अथ महाव्रतम्
"एवपन्था एतत्कर्म, विद्यामथवन विद्य अथैतस्य समाम्नायस्य, महाव्रतस्य
पञ्चविंशतिं सामिधेन्यः" इन पांच आरण्यके अध्ययनके लिये- पांच व्रतोंका आचरण करनेका विधान है। महानाम्नी-उपनिषत्- गोदान, वगैरह,

(४-१४) ~~ऐ. ब्राह्मण~~ ऐतरेयब्राह्मण - वस्तुविज्ञान (२)

१४- ऋक्. ऐतरेय ब्राह्मण - इसमें १ पंचिकामें, यज्ञीय दीक्षा ग्रहणका विधान हैं,
और अग्निका मथनविधि, दूसरी पंचिकामें सोमयागका विधान है (उसमें "मैत्रावरुण"
नामका "एक ऋत्विज ज्यादा है, और ७ होतृगण के ऋत्विज है, ~~४ सामगान के हैं~~,)
३ पंचिकामें अग्निष्टोम क्रतुका विधान है। ऋभुदेवता का प्रादुर्भाव मानवों को देव स्वरूप अमृतत्व
की प्राप्ति, ४ पं. एकाह अहर्गण, यह वगैरह, ५ पंचिका में ओंकारका उदय- और
तीन वेदोंसे यज्ञ रथका सञ्चालन-

(६ पंचिकामें, ३ सवन षोडशी का विधान बताया गया है) ७ पंचिकामें हरिश्चन्द्रका
यज्ञ, और शुनःशेप देवरातका आख्यान है। वह भी ऋग्वेद के मं. १- सू. २४ से
देवरातके मंत्रदर्शनसे उस आख्यानकी कल्पना की गई है,
८ पंचिकामें- अन्तमें "ब्रह्मणः परिमरः" इस खंडमें "विद्युत्, वृष्टि, चन्द्रमा,
आदित्य और अग्नि इन पांच देवताओंका विलय वायुमें बताया गया है, वापस उस
वायु से इन पांचों देवताओंका उदय भी दिखाया गया है।
ऐ. आरण्यकमें, ऐ. उपनिषत् भी है। वह "एवपंथा एतत्कर्म" यहांसे प्रारंभ किया गया है।

(४-१५) तैत्तिरीयकृष्णयजु ब्राह्मण- वाङ्मय (१)

१५ कृ. यजु. तै. ब्राह्मणः इसमें ३ अष्टक है। मन्त्र और ब्राह्मण भागसे मिश्रित है,
इसका पाठ स्वरसे सहित किया जाता है। मन्त्रोंको भी पदपाठ वगैरह नहीं है। यह सारस्वत
पाठका क्रम है। "उद्धन्यमानमस्या अमेध्यम्" इस वाक्यसे प्रारंभ हुआ है, यह
वेदिकरणसे अग्निका आधान वगैरह विधिका बोधक है,
(मैत्रायणी शाखाकी संहितामें ही ब्राह्मणकाभी पाठ साथ साथ किया जाता है,)
आरण्यके- उपनिषदः-

(४-१६) तै. कृष्णयजु ब्राह्मण - तत्त्वविज्ञान (२)

१६ तै. ब्राह्मण- पहले अग्निका आधानका तत्त्व बताया गया है,
३ अष्टकमें "अग्निर्नः पातु कृत्तिकाः" यह अग्निका आधान कृत्तिकानक्षत्रोंमें करनेका
विधान है, अतः "कृत्तिकादि- २७ नक्षत्र बताये गये है। और उन नक्षत्रोंकी इष्टिभी है।
उसी ब्राह्मणमें "ऋतं प्रपद्ये सत्यं प्रपद्ये" यह होताका मंत्र भी है, जोकि दर्शपूर्णमास वगैरह सभी इष्टिमें होता को अवश्य पढना पडता है

(४-१७) मूलयजुर्वेद कांडिकेय ब्राह्मण- वाङ्मय (१)

१७- मूलयजु ब्राह्मण - बौधायनादि आचार्यों के कांडानुक्रमणिका सूत्र के अनुसार इसका ग्रथन हुआ है, वह भी प्राजापत्यादि कांडो के अनुक्रम से है. संहिता की तरह यहां भी पांच कांड हैं, जो उन मंत्रों के विधायक हैं; यहां पर इसी ब्राह्मण में - आरण्यक और उपनिषद् का भी समावेश हुआ है (जैसे शतपथ ब्राह्मण में है), इस ब्राह्मण में एक विशेषता है; "ब्राह्मण और अनुब्राह्मण" जो यज्ञादि विनियोजक है वही ब्राह्मण है, जिसमें मन्त्रार्थ का आख्यान है, वह अनुब्राह्मण है, मूलतः "तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसित्" यह अध्याय ब्राह्मण का है, "प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः" यह अध्याय अनुब्राह्मण का है,

(४-१८) मूलयजु- ब्राह्मण- तत्त्व विज्ञान (२)

१८ मूलयजु- ब्राह्मण-

इसमें "पौरोडाशिकं, याजमानः, होतारः, हौत्रं, पितृमेध" ये पांच विषय ही इस ब्राह्मण में प्राजापत्य काण्ड में ~~पांच विषय ही~~ नियत हैं; इसी प्रकार पांचो काण्डों में अलग अलग विषय हैं, "प्राजापत्यं, सौम्यं, आग्नेयं, वैश्वदेवं, स्वायम्भुवम्" इन काण्डों के विषय है- उसमें याज्यापुरोनुवाक्या- उपनिषद् वगैरह भी आए हैं,

इसमें "इषे त्वोर्जे त्वेति पर्णशाखां छिनत्ति-" यह मन्त्रों का विनियोजक ब्राह्मण है, "इषे त्वोर्जे त्वेमा ह। इषमेवोर्जं यजमानेऽवरुन्धे" इस प्रकार मन्त्रार्थ का विवरण रूप व्याख्यान ही अनुब्राह्मण का विषय है,

(४-१९) शुक्लयजु शतपथ ब्राह्मण- वाङ्मय (१)

१९ शुक्ल यजुः शतपथ ब्राह्मण--२

~~यह~~ इस ब्राह्मण का प्रारम्भ "व्रतमुपैष्यन्" इस वाक्य से हुआ है। यह दर्शपूर्णमास इष्टि का विनियोजक है; आगे उसीका विधान है, ~~स~~ व्रतग्रहण के लिये सन्निधान में "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि इस मन्त्र को विनियोग किया गया है, आगे उस व्रत में खानपान का नियम विहित है। उसी तरह आगे सोमयाग वगैरह का विधायक वाक्य हैं, इस ब्राह्मण में - ~~उपनिषद् और~~ आरण्यक और उपनिषद् भाग का भी समावेश हुआ है, जिससे "बृहदारण्यकोपनिषद्" करके अलग निकाला गया है; उसमें आठ अध्याय हैं, २

(४-२०) शतपथ ब्राह्मण- वस्तु विज्ञान- (२)

२० दर्शपूर्णमास की इष्टि में दीक्षा ग्रहण के मन्त्र में - अनृत से मुक्त हो के सत्यत्व पाता है, ऐसा भावार्थ है "इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि" अर्थात् सत्य व्रत का विधान किया गया है। वहे अनृतत्व ही मनुष्यत्व है, सत्यत्व ही देवत्व है, यह तत्त्व है। ब्राह्मण में स्पष्ट है "अनृतात सत्यमुपैमि मानुषाद्दैव्यमुपैमि। दैवीं वाचं यच्छामि ॥ अनृतत्व से

मुक्त होकर, सत्यत्व को पाता हूं। मनुष्यत्व से देवत्व पाता हूं," इसके लिए इस दैवी वाणी का संयमयोग का विधान भी किया गया है, ऐसे सैकड़ो प्रकार का तात्त्विक भाग और और यज्ञों में हैं, २-- इसी में अंतर्गत बृहदारण्यक उपनिषद् में अन्तर्यामि मधुविद्या, मुख्य प्राण, आत्मदर्शन - अक्षरब्रह्मविद्या वगैरह उपदिष्ट हैं,

(४-२१) सामवेद- ब्राह्मण- वाङ्मय (१)

१ सामवेदमें- ताण्ड्य ब्राह्मण – प्रधान है, उसीके आश्रयमें, सामविधान ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण वगैरह और ७ ब्राह्मण हैं, जोकि बहुत विस्तृत रूपसे फैला हुआ है, उनके अध्याय खण्ड वगैरहकी संख्या - आख्यानके समय बताई जाती है,

सामवेदके अन्तर्गत इसी ब्राह्मणमें उपनिषद् भाग भी है. जो कि छान्दोग्योपनिषत् नामसे प्रसिद्ध है, उसमें आठ अध्याय हैं,

(४-२२) ताण्ड्य ब्राह्मण - वस्तुविज्ञान-(२)

२- इस ताण्ड्य ब्राह्मणमें सोमयागादि - सत्रयाग तकके जो सामगानका विधान किया गया है, उसका स्वरूप और गायनका वैशिष्ट्य उनकी देवताओंका स्वरूप तत्त्वभी बताए गए हैं, और उन गायनोंका विशिष्ट फलभी निर्दिष्ट है,
इस सामवेदके छान्दोग्य उपनिषत् में उद्गीथ - मुख्य प्राण वगैरह और उपासना योग उपदिष्ट है, और त्रिवृत्करण सृष्टिका तत्त्व है. तत्त्वमसि महावाक्यका उपदेश है भूमानन्द विद्या, संवर्ग विद्या, पञ्चाग्नि विद्या, और पुरुष विद्या वगैरह अध्यात्म-विद्याका तत्त्वभी ओत प्रोत भरा है,

(४-२३) अथर्व ब्राह्मण- वाङ्मय- (१)

३ इन ब्राह्मणोंमें सोमादि यज्ञीय विशियोगका कोई विधान नहीं है, बहुतसी औषधि वनस्पति वगैरहका बोधक वाङ्मय ही ज्यादा है, कुछ आभिचारिक कर्मोंका भी विधायक पाया जाता है,
इसीमें उपनिषत् वाङ्मय बहुत है," केन, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, और गणपति अथर्वशीर्षोपनिषत् वगैरह सुप्रसिद्ध ही हैं, यह गणपति. अ. शीर्षोपनिषत् तो बच्चे लोगोंको उपनयनके बाद पढ़ाया जाता है. उससे होमहवन भी किया जाता है

(४-२४) अथर्व- ब्राह्मण- उपनिषत्- तत्त्वविज्ञान (२)

४- केनोपनिषत् मे हैमवती उमादेवीके मुखसे इन्द्रके लिए ब्रह्मोपदेश दिया गया है. बाद प्रवृत्ति निवृत्ति और निष्ठा के साथ योग भी बताया गया है,
पिप्पलादशाखाकी प्रश्नोपनिषत्में ६ ऋषियोंके छे प्रश्नोंका उत्तरके रूपसे ब्रह्मतत्त्वका प्राणोपासनादि विषयोंका उपदेश किया गया है
मुंडकोपनिषत् में इसी परा और अपरा विद्याका उपदेश दिया गया है, माण्डूक्यमें ओंकाररूप प्रणवाक्षरका रहस्य बताया गया है. जोकि "श्री गौडपादाचार्यजीकी कारिकामें ओतप्रोत तत्त्व ज्ञान भरा है.
इनसबों के उपर श्री शङ्कराचार्य वगैरह आचार्योंका भाष्य मौजूद है,

सामवेदमें "उपनिषद् ब्राह्मण को (संहितोपनिषत् अथवा मन्त्रब्राह्मण (दोसे) नामभी है.

~~४-२५~~ (४-२५)- वेदोपनिषत्. वाङ्मय (१)

२५ वेदोपनिषत् -- चारों वेदों में वेदोपनिषत् "नामका कोईभी एकभी ग्रन्थ नहीं है. जैसे ~~इश~~ और और उपनिषत् प्रसिद्ध हैं. "एवा वेदोपनिषत्॥ तै. शिक्षोपनिषत् में यह शब्द है, यह तात्विक अर्थका साङ्केतिक लक्षण से युक्त नाम है," वेदमाने मन्त्र, उपनिषत् माने अध्यात्म-तत्त्वप्रधान ब्राह्मण, इन दोनों के योगसे वेदोपनिषत् माना गया है. जैसे कि "ईशावास्योपनिषत् - यह शुक्लयजुर्वेद की संहिता में ४०वां अध्याय है. उसीमें बृहदारण्यकोपनिषत्का उत्तरार्ध भाग है, श्वेताश्वतरमन्त्रोपनिषत् भी संगृहीत है; ~~यह संहितोपनिषत् नामसे~~ भी-~~प्रसिद्ध~~ है, इसीप्रकार वेदमंत्र मेंही अध्यात्मतत्त्व प्रधान उपनिषत् का अर्थ है; यह भी वेदोपनिषत् है। जैसे- वामदेवके दर्शनमें - "अहं मनुरभवं सूर्यश्च" इनतीन ऋङ्मन्त्रसे बृहदारण्यक-उपनिषत् में "अहं ब्रह्मास्मि" इस अध्यात्मतत्त्वको महावाक्यका उपदेश कियागया है,

~~(४~~ (४-२६) वेदोपनिषत्- तत्त्वविज्ञान-(२)

२६ इसके तत्त्वज्ञान में भी यही विशेषता है, इस नामका कोई अलग तत्त्वभी नहीं है, इसी अर्थके संकेतसेही उस ~~अर्थका~~ तत्त्वका ग्रहण करना होगा, उस तत्त्वज्ञानके बारेमें यह वेदोपनिषत् शब्द एक बड़ा रहस्यार्थका बोधक है, "विद् ज्ञाने" मन् अवबोधने "मन्त्रा मननात्" इन धातुके अर्थसे अनुभवरूप और मननरूप अध्यात्म तत्त्वही इसमें "वेदोपनिषत्" नामसे लिया जाता है, यह वेदमंत्रों मे ही ओतप्रोत भरा है, ऋग्वेद में दीर्घतमाके दर्शनमें (मं.१-१६४-१-५२) अस्यवामीय सूक्त में है. "अस्य द्विपञ्चाशत् उत्पस्तवं त्वेतत् संशयोत्थापन प्रश्न प्रतिवाक्यान्यत्र प्रायेण ज्ञान मोक्षाक्षर प्रशंसा च इति. सर्वानु. सूत्र. इसीप्रकार अथर्व वेद में मणिसूक्त, उच्छिष्ट. स्कम्भ. व्रात्यसूक्त वगैरह में भी यही तत्त्व गुप्त है,

(वेदों के षडङ्ग)

(४-२७) वेदाङ्ग शिक्षा - वाङ्मय (१)

(१) वेदाङ्ग शिक्षा- यह पाणिनिकी बनाई हुई है. इसमें स्वर वर्ण मात्रा वगैरह वर्णोंका
२७ उच्चार सिखाया गया है; अनुष्टुप् श्लोकबद्ध है. (श्लोकसं.)
इसमें वैदिक और संस्कृत तथा प्राकृत वगैरह सभी भाषाओं के मूल बीजरूप ६४ अक्षरों का दर्शन संशोधन किया गया है "त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः प्राकृते संस्कृते चापि स्वयम्प्रोक्ताः स्वयम्भुवा" "स्वराविंशतिरेकश्च इत्यादि॥

यहभी "अइउण् ऋलृक्.० - हल् - इन १४चौदह सूत्रोंके संशोधनसे निकाला गया है. जोकि अक्षरसमाम्नाय "माना गया है," येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ॥ कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

(१) (४-२८) वेदांगशिक्षा. वस्तुविज्ञान-(२)

२८- वेदाङ्ग शिक्षा — ~~इस शब्द शास्त्रके साथ लिपिशास्त्रका भी ग्रहण किया गया है. जैसे उदाहरण - "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः~~
वर्णों के उच्चार में - "द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद् यत्रौकारवकारयोः" ओकार-और वकारके उच्चार में दोनों ओठ जुटाकर गोल बनाना चाहिये, उसीसे ओकार वकार निकल सकते हैं. उसमें भी "वकारस्य दन्तोष्ठ्यम्" वकारके लिये दांत और ओठ जुटाना चाहिये, नहीं तो ओकार वकारोंका उच्चार ही नहीं हो केगा, इसी प्रकार सेकड़ों उदाहरण हैं. वे सब आगे इनके विवरण व्याख्यान में बताये जायें गे

(४-२९) कल्पसूत्र - वाङ्मय (१)

(२)

२९ कल्पः - हर एक वेदकी हर एक शाखामें अलग अलग कल्प सूत्र है, उसमें भी श्रौत कल्प और स्मार्त कल्प ऐसे दो प्रकार प्रधान है, जिसमें वैदिक यज्ञादि कल्पना है वह श्रौतकल्प, जिसमें उपनयनादि संस्कारोंकी कल्पना है वह स्मार्तकल्प, वही गृह्यसूत्रके नामसे प्रसिद्ध है;

(१) ऋग्वेदमें - आश्वलायन श्रौतसूत्र, आश्व. गृह्यसूत्र, आ. गृ. परिशिष्ट,
(२) तै. यजुमें बौधायन-आपस्तम्ब-सत्याषाढीय. श्रौत और गृह्यसूत्र (३) शुक्लयजुमें - कात्यायन श्रौतसूत्र, (पारस्कर गृह्य सूत्र) (४) सामवेद श्रौत-गृह्यसूत्र (५) अथर्व गृह्य सूत्र.

(४-३०) कल्पसूत्र - वस्तुविज्ञान (२)

(२)

३० कल्पका तत्त्व - "कल्पते इति कल्पः, यज्ञादि कामकरनेमें और फल देनेमें समर्थ होता है। "कल्पते" कल्पना की जाती है, "कल्पयति" कल्पना कराता है, इस प्रकार - प्रत्यक्ष क्रिया और प्रक्रिया का ज्ञान पाना, और करना, तथा दूसरे से भी कराना, यही कल्पका मुख्य तत्त्व है,
श्रौत कल्पमें सात पाकसंस्थाएं, सात हविःसंस्थाएं, सात सोम संस्थाएं हैं, और यह हरएक शाखामें भी अलग अलग रूपसे बताया गया है, और उनमें भी अलग अलग देवता और हविका विधान है, और अलग मन्त्रोंका भी विधानकियाहै,

अट्- अष्ट् एषु-शर-हल -

(४-३१) वेदाङ्ग व्याकरण - वाङ्मय (१)

(३)

३१ व्याकरण - यह "अष्टाध्यायी सूत्र" नामसे प्रसिद्ध है, "वृद्धिरादैच्" इस सूत्रसे इसका प्रारंभ है, इसको वररुचिकी वृत्ति है, और पतञ्जलिका महाभाष्यभी प्रसिद्ध है, यह सूत्रके अनुक्रमसे बनाए गए हैं, इसी प्रकार "वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी" नामसे भट्टोजी दीक्षितका बनाया हुआ दूसरा ग्रन्थ है, उसमें "पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिङ्ग, कारक, समास, स्त्रीप्रत्यय तद्धित, धातुपाठ, वैदिक स्वर प्रक्रिया" वगैरह प्रकरणोंके विभागसे विवेचन किया गया है, यह सूत्र मूलतः "अइउण् । ऋलृक्. - हल्" वगैरह १४ सूत्रों से प्रारब्ध है; क्योंकि अक्षर-समाम्नाय माना गया है, उसमें "अण्, इण्, अच्, अल्-हल्" वगैरह अनेक सांकेतिक प्रत्याहार हैं,

लिपि + कल्पना

जिनदो वर्णोंसे अनेकवर्णोंका ग्रहण होता है,

(४-३२) व्याकरण - वस्तुविज्ञान (२)

(३)

३२ व्याकरण - शब्द के और उसके वाच्यार्थका सम्बन्ध और यथार्थ ज्ञान यही व्याकरणका मुख्य उद्देश है, बिना धातुके अर्थज्ञानसे नामपदका स्वरूपज्ञान नहीं हो सकता है, उसमें भी पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग, सर्वनाम, एकवचन द्विवचन बहुवचन, ये तीन वचन हैं, सात विभक्तियां हैं, उनका अर्थभी अलग २ हैं,
इसके अलावा "अव्यय" है जिसका रूप बदलता नहीं, अव्ययंनिपातिः - १६ अर्थोंमें एकही रूपसे वह अव्यय रहता है,
धातुकी प्रक्रिया नामपदकी तरह - प्रथम-मध्यम उत्तम. एकवचन द्विवचन-बहुवचन से युक्त है, उसमें भी भूत वर्तमान और भविष्य कालोंके योगसे दस लकारोका विधान है,
"लट्, लिट्, लङ्, लिङ्, लुङ्" वगैरह - प्रेरणार्थक भी अलग है।

(४) (४-३३) ~~निरु~~ वेदाङ्ग निरुक्त- वाङ्मय (१)

३३ निरुक्त- वेदमंत्रों में जो नामपद क्रियापद वगैरह पद हैं, वे निघण्टुओं में बताये गये हैं, "गौः ग्मा क्ष्मा क्ष्मा" (२१) पृथिवीनाम हैं, "राष्ट्री अर्यः नियुत्वान् इनः ये ४ ईश्वरनाम, "इरज्यति, पत्यते, क्षयति, राजति, ये चार ईश्वर के क्रियापद हैं, उसके कोषका यह निरुक्त भाष्य-भाष्य है, इसमें उन वैदिक शब्दों के अर्थों का निर्वचन किया गया है,

यह भी व्याकरण से सम्बद्ध है, "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" इस मन्त्र की वाणी को चार पद हैं, वे नाम आख्यात (क्रियापद) उपसर्ग और निपात हैं, रूप हैं, जिन ४ पदों में सारे शब्द राशिका अन्तर्भाव माना गया है,

(४-३४- निरुक्त - वस्तुतत्त्वज्ञान (२)

(४)

३४ निरुक्त के बिना ~~वेदको~~ वेदमंत्रों का अर्थज्ञान होना असंभव ही है, इसमें शब्दों और अर्थों का निर्वचन ही प्रधान विषय है, उसमें भी भूत भुवन और देवताओं का निर्वचन है, "पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक के विभाग से "अग्नि वायु सूर्य ये तीन देवता बताई गई हैं, और शक्तिरूप स्त्री देवता भी बताई गई है, वे अदिति, गौरी माध्यमिका वाक्- और इळा वगैरह प्रसिद्ध हैं, दैवतकांड में इसके अलावा ऋग्वेद के अनेक वेद मंत्रो का अर्थ निर्वचन भी है, और वेद के कुछ विशिष्ट धातुओं का अर्थ भी बताया गया है, जो कि व्याकरण में नहीं है, "उर्णोति चाकशीतिः पश्यतिकर्मा, दुवस्यतिः परिचरणकर्मा, आविवासतिः परिचरणकर्मा, इत्यादि, इस वेदार्थ के विषय में अधिभूत अधिदैवत और अध्यात्म तत्त्वों का योग भी बताया गया है," त्रिविधा हि स्तुतयो भवन्ति, प्रत्यक्षकृताः परोक्षकृताः आध्यात्मिक्यः" उसके तीन प्रकार का वेदार्थ बताया गया है,

(४-३५) वेदांग छन्दः (वाङ्मय (१)

(५)

३५ छन्द - यह वेदमन्त्र के स्वरूप ज्ञान में छन्द ही प्रधान है, इस छन्द से ही वेद का नाम छन्द पड़ा है, इस छन्द के योग से ही वेदको मन्त्र प्रसिद्ध हुआ है, उस मंत्रत्व और छन्दस्त्व ही वेदों का वेदत्व है, "~~मयस्त्व~~ वह एक अक्षर से ही छन्द का प्रारंभ होता है, "छन्दः गायत्री दैव्येकम्" ओं "इस मन्त्र का दैवी गायत्री छन्दः यह यजुर्मंत्र का लक्षण है। ऋङ्मन्त्रों के ८ आठ अक्षर और तीन पादों के योग से गायत्री वगैरह छन्द सिद्ध हुआ है, ११ अक्षरों के ४ पादों से त्रिष्टुप्, १२ अक्षरों के ४ पादों से जगती, इत्यादि,

(४-३६)- छन्दः - वस्तुविज्ञान (२)

(५)

३६- इस छन्द का तत्त्वज्ञान बहुत ही गहरा है, अपार भी है, इसका सामर्थ्य कल्पनातीत है जिस छन्द के योग से भगवान् भी छन्दः पुरुष भया है, वाणी भी वेद रूप बनी है, (और - प्रत्यक्ष ब्रह्म तथा मन्त्ररूप बनी है, यह तत्त्व दीर्घतमा ऋषि ने स्पष्ट बताया है, "यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत। यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥" इन तीन छन्दों के अन्दर जो तत्त्व है उनके ज्ञान से अमृतत्व मिलता है। (ऋ.मं. १।१६४।२३)

(५) ## (४-३७) वेदाङ्ग ज्योतिष- वाङ्मय (१)

३७- वेदाङ्ग ज्योतिष- यह कालचक्रसे सम्बद्ध है, वह संवत्सर और युगरूप कालसे युक्त है; यह संवत्सरचक्र पांच अंगोंसे सिद्ध है, "दिन, ऋतु, अयन, मास और पक्ष, यह यज्ञके योग्य काल जाननेके लिये साधन है, सांपके सिरपर मणि जैसे यह ज्योतिष सभी वेदों और वेदांगके सिर ही माना गया है, वेद यज्ञके लिये प्रवृत्त हुआ है, कालके योगसे यज्ञका विधान किया गया है, अतः इस कालका ज्ञान अत्यंत आवश्यक है, यह ग्रन्थ लगध मुनिका बनाया हुआ है, इसमें अध्याय (   ) श्लोक (   ) हैं। इसमें आर्च ज्योतिष और याजुष ज्योतिष ऐसे दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, इसको सोमाकर भाष्यभी है,

प्रश्न सं० व्याख्यान-

(४-३८) ज्योतिष- वस्तुविज्ञान (२)

(५)

३८- ज्योतिषका ज्ञानभी अत्यंत गूढ है, यह काल सभी भूत और भुवनोंका नियामक है; यह यम नियन्ता धर्मराज भी माना गया है, यह विवस्वान्- सूर्य स्वरूपी ज्योति है, तथा विद्युत और अग्निरूप ज्योतिभी इसी कालका है, विश्वके उपसंहारक शक्तिसे युक्त रुद्रभी यही कालरूपी है,

इसी कालचक्रमें नक्षत्र चक्रभी है, वह २७ नक्षत्रोंसे युक्त है, वह वेदमें कृत्तिका नक्षत्रसे प्रारंभ होता है, उसकी देवता अग्नि है, अतः कृत्तिका नक्षत्रमें अग्निका आधान विधान है, दूसरा पक्ष अश्विनी नक्षत्रसे प्रारंभ होता है, इन दोनोंका आश्रय शरत् ऋतु है, अतः वही शरत् संवत्सर माना गया है; इस संवत्सरचक्रमें ३ संधियां हैं ६ ऋतु, १२ मास, २४ अर्धमास, ३६० दिन, ७२० अहोरात्र भी हैं, १ तेरह का महिना अधिक मासभी है, वह तीन सालोंमें आता है, यह कालचक्र ऋग्वेदमें मं० १, १६४ सूक्तमें समाधित है, और अथर्वमें २ कालसूक्त ही है- उसमें कालका तत्त्व ओतप्रोत भरा है।-

(४-३९) पराविद्या- वाङ्मय-(१)

३९ पराविद्या — चारों वेदोंमें कहीं भी इस पराविद्यानामका एक भी अलग स्वतन्त्र नहीं है, वेदोपनिषद्‌के माफल सांकेतिक होनेके कारण उसके लक्षणसे जहां जहां पराविद्या उपदिष्ट है वही वे सभी ली जा सकती है। जैसे कि- "अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते"- ऐसा प्रारम्भ है, "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्" (मुं० उ० १।१।७) जैसे ऊर्णनाभि मकोडा अपने ही पेटसे सूक्ष्मतन्तुको बाहर छोडता है, फिर अन्दर ले लेता है, जैसे पुरुषके शरीरमें केश रोम उत्पन्न होते हैं उसी तरह उस अक्षर ब्रह्मसे यह विश्व पैदा होता है,

(४-४०) पराविद्या- वस्तुविज्ञान (२)

४० पराविद्या - इस नामका कोई तत्त्व भी अलग नहीं है। जिस विद्यामें वह परब्रह्म वस्तु पाया जाता हो वह पराविद्या है। यहां पर ऊर्णनाभि मकोडाका दृष्टान्त बहुत विशिष्ट ज्ञानका है, जो कि इस प्रत्यक्ष दृष्टान्तसे उस परोक्ष ब्रह्म वस्तुको जान सकते हैं और पा सकते हैं और पृथिवीमें ओषधिका उद्भव, पुरुषमें केश और रोम पैदा होते हैं, और बढते भी हैं, इसी तरह वह ब्रह्म वस्तु भी अपनी चेतनासे बढता है, यही ब्रह्मवस्तुका प्रधान लक्षण है, यह श्रीशंकराचार्यजीने शारीरक भाष्यमें स्पष्ट कहा है कि- "अस्ति तावद् ब्रह्म० - सर्वज्ञं सर्वशक्तिसमन्वितं बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्।" ब्रह्म वस्तु है बृह धातुके अर्थके योगसे। यही पराविद्याका स्वरूप लक्षण है," जन्मद्यस्य यतः इति ज्ञात वेदाः (ब्र. सू. १।१ ।२)

वेदोंका उपाङ्ग षड्दर्शनशास्त्र

(४-४१) धर्ममीमांसाशास्त्र वाङ्मय (१)

(१)

४१ धर्ममीमांसा- प्रारम्भ "अथातो धर्मजिज्ञासा।चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।
(चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनम्) जै. सू. १।१-१-३-) यह जैमिनि आचार्यका है,
इसमें १२ अध्याय हैं, १००० अधिकरण है. सूत्र. की संख्या (   ) है,
पांचवा सूत्र- "औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः तस्य ज्ञानमुपदेशश्चार्थेऽनुप
लब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्य अनपेक्षितत्वात्" (औत्पत्तिकमिति नित्यं ब्रूमः)(शबरभा.
शब्दके आविर्भाव सेही अर्थों का सम्बन्ध नित्य सिद्ध है, उपका उपदेश ही ज्ञान है,
वह अनुपलब्ध परोक्ष अर्थ में प्रमाण है. यह बादरायण आचार्यका भी सम्मत है, क्योंकि यह शब्द
इतरकी अपेक्षा के बिना अर्थका बोध करानेमें समर्थ है, इत्यादि संक्षेप अर्थ है,

(४-४२) धर्ममीमांसा- वस्तुविज्ञान (२)

(१)

४२- धर्ममीमांसा- (~~प्रारम्भ~~) इन अधिकरणों में वेदोंकी चर्चा-से निर्णय कियागया है.
जिसमें धर्मके बारेमें संशय और विरोध होता है, उसके निवारणके यह आवश्यक है,
जैसे कि- "वेदंकृत्वा वेदिं करोति" इस वाक्यमें वेदको करके वेदि करना है इत्यादि ये,
वह वेद कृतिसाध्य नहीं होनेके कारण वेदशब्दका अर्थ एक दर्भमुष्टिका बोधक है.
यह शास्त्रीय संकेत से सिद्ध है, इसीप्रकार- हजारों विषयपर है, (दूसराउदाहरण-
"अग्निहोत्रं जुहोति यवागूं पचति" अग्निहोत्रका हवन करताहै, यवागू+काञ्जी पकाता है
यहां पर अग्निहोत्र का हवन पहले बताया गया है काञ्जी पकाना बाद दिखाया है, इनमें
यवागूसे अग्निहोत्र करनहीं सकते हैं, अतः पहले यवागू पकाना बाद अग्निहोत्र करना.)
मन्त्र- "ऋक्-साम- यजु- और ब्राह्मण का लक्षण भी बताया गया है, "तेषांऋक्यत्रार्थवशेनपाद-
व्यवस्था, गीतिषु सामाख्या, शेषे यजुःशब्दः, मन्त्रा याज्ञिकानां समाख्या शेषे ब्राह्मण शब्दः ४

(४-४३) ब्रह्ममीमांसा शास्त्र वाङ्मय- (१)

(२)

४३ ब्रह्ममीमांसा- ब्रह्मसूत्र- "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा- जन्माद्यस्य यतः, शास्त्र-
योनित्वात्, तत्तु समन्वयात्" इन सूत्रों से ४ अधिकरणों की रचना की गई है,
इसमें ४ अध्याय है हर एक अध्याय में ४-४ पाद हैं, सूत्रकी संख्या (   ) है
बाद "ईक्षतेर्नाशब्दम् (५) आनन्दमयोऽभ्यासात् (६) ज्योतिश्चरणाभिधानात् (७)
आकाशस्तल्लिंगात् (८) अतएव प्राणः (९) प्राणस्तथाऽनुगमात् (१०) ऐसे दस
अधिकरणोंकी रचना पहिले पादमें की गई है, बाद अन्तर्यामी, वैश्वानर, दहर और
अस्पष्टलिंग शब्दोंके अर्थके निर्णयके लिये अनेक अधिकरण रचाये गये हैं,

(४-४४) ब्रह्ममीमांसा- वस्तुविज्ञान -(२) (साधन और फल का कारण है)

(२)

४४ ब्रह्ममीमांसा- इस विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलयके मूल कारण रूप एकसत्य
वस्तु ही ब्रह्म है, वैसे परोक्ष वस्तु की सत्तामें जो जो आक्षेप हैं उन सभी विषयोंका
विचार और विमर्श से निर्णय करना ही इस शास्त्र का प्रधान उद्देश है, वह भी मूलतः
वेदों और उपनिषदों के वचनों के अनुसार यहां पर कियागया है, इसमें अपना अनुभव
भी एक प्रमाण माना गया है, उसी को अवगति तथा अवबोध रूप से शारीरकभाष्यमें
बताया गया है, "तत्त्वमसि" वाक्यसे उस शब्द ज्ञानकी आवृत्ति बताई गई है,
"आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" उस आवृत्तिसे अनावृत्ति रूप मोक्ष ही अन्तिमफल है.
जोकि परमपदरूप अमृतत्व है. "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्" इति ४

१२ "योगाङ्गानुष्ठानाद् ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः" इति -

(४-४५) योगदर्शनशास्त्र- वाङ्मय (१)

(३) (यह पतञ्जलिका विरचित है।)

४५ योगसूत्र - प्रारम्भ - "अथ योगानुशासनम्। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" यो.सू.१।१।१-४) बाद "ईश्वर प्रणिधानाद्वा" अष्टाङ्ग योग वगैरह साधनोंका उपदेश किया गया है। (यमनियमादि) उसमें "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। एते जाति देश काल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्" देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः। त्रयमेकत्र संयमः" इन सूत्रोंसे धारणा ध्यान समाधि से युक्त संयम योगका विधान बताया गया है। इसका फल भी सम्प्रज्ञात समाधि। तथा असम्प्रज्ञात समाधि बताई गई है, और भी अवान्तर लौकिक प्रापञ्चिक इष्टसिद्धि रूप फल भी दिखाएं गये हैं। -

(४-४६) योगसूत्र- वस्तुविज्ञान (२)

(३)

४६ योगसूत्र - इसमें अपनी सभी इष्टसिद्धिके लिये चित्तवृत्ति निरोध रूप आध्यात्मक योग ही मूल साधन है, यह न केवल शब्दज्ञानसे सिद्ध हो सकता है, किन्तु आन्तर्य अभ्यासकी प्रक्रियारूप साधनसे ही हो सकता है, उसमें इसका तत्त्व ज्ञान ही प्रधान है। उसीसे आत्मवस्तुका विज्ञानरूप आत्मनिष्ठा प्राप्त हो सकती है, यही पतञ्जलीका उपदेश है, उसीके लिये अभ्यास और वैराग्य के सह योगसे वह चित्तवृत्तिका निरोध करना, उसीसे द्रष्टा रूपी जो अन्तरात्मा है। उसके स्वरूपमें स्थिर होनेसे आत्मनिष्ठा रूप फल सिद्ध होगा,

इसी प्रकार अहिंसा सत्यादि यम नियमोंका अनुष्ठान। धारणा ध्यान और समाधिद्वार सविकल्प तथा निर्विकल्प रूपी सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि भी सिद्ध होती है, इसलिए यही योगशास्त्रका प्रधान उद्देश और उपदेश है।

(४-४७) साङ्ख्यदर्शन- वाङ्मय (१)

(४)

४७ साङ्ख्य सूत्र- यह कपिल मुनिका है, बनाया हुआ सूत्ररूप है (सू.सं.) सांख्य कारिका नामका दूसरा ग्रंथ है, वह आर्या वृत्तसे बद्ध श्लोकरूप है, उसकी टीका सांख्यतत्त्वकौमुदी नामसे प्रसिद्ध है। श्लोक सं.

सांख्यकारिका प्रारम्भ "दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ। दृष्टे साऽपार्था चेत्। ॥ दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।" इत्यादि-

(४-४८) साङ्ख्यसूत्र- वस्तुविज्ञान (२)

(४)

४८ साङ्ख्यसूत्र - इसमें पुरुष और प्रकृतिका तत्व उपदिष्ट है, उनमें - पुरुष केवल चेतनरूप आत्मा है, प्रकृति शक्ति रूप अचेतन है, पुरुषके अधिष्ठान से अचेतन प्रकृति की प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप क्रिया होती है- पुरुष तो केवल तटस्थ है। विषयों से निर्लिप्त है, प्रकृति सत्त्व रज तम इन तीनों गुणों से युक्त है, "मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥ इस प्रकार इस सांख्यशास्त्रमें चौवीस पदार्थ प्रसिद्ध हैं,

(५)
(४-४९) वैशेषिक दर्शन. वाङ्मय (१)

४९ वैशेषिकसूत्र- यह कणाद मुनिका प्रणीत है, प्रारंभ "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् (वै-द-१।१।१-३) अब हम धर्मका आख्यान करते हैं, जिससे- अभ्युदय और निःश्रेयस माने मोक्षकी सिद्धि होती हो वह धर्म है, उस धर्मको उपदेश करनेके कारण वेदका प्रामाण्य माना गया है, यहां पर अन्योऽन्याश्रय दोषकी कल्पना भी होना सम्भव है, क्यों की धर्मके उपदेशके कारण वेदको प्रामाण्य, और वेदसे उपदिष्ट होनेके कारण धर्मको प्रामाण्य माननेसे यह अन्योऽन्याश्रय दोषकल्पनाका आस्कार होता है। यह वैशेषिक दर्शन सप्त पदार्थवादी है, "द्रव्य गुण कर्म सामान्य ~~विशेष~~ विशेष समवायाः पदार्थाः" इस सूत्रमें ६ पदार्थ ही बताया गये हैं, लेकिन अभाव भी पीछे से लिया गया है.

(४-५०) ~~न्यायदर्शन~~ वैशेषिक दर्शन, वस्तुविज्ञान (२)
~~५०~~ (५)

५० वैशेषिक सूत्र- इस दुनियामें सुखसंपत्तियोंका अभ्युदय ही सबोंको इष्ट है, उसी तरह दुःख निवृत्तिरूप मोक्षभी इष्ट है, यही प्रपञ्च और परमार्थका स्वरूप है, इन दोनोंके कारण रूप धर्मके शासनके कारण वेदका प्रादुर्भाव हुआ है, यह वेद ही धर्मके लिये प्रमाण माना गया है,
इस वेदमें सात पदार्थ माने गये है, वही इस धर्ममें मूलवस्तु है. इनमें साधर्म्य और वैधर्म्यके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष मिलता है. "द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायानां साधर्म्य वैधर्माभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः" ऐसे इस सूत्रमें स्पष्ट कहा गया है, इन पदार्थोंमें परस्पर समान धर्म और विरुद्ध धर्म इन दोनोंके साथ तत्त्वज्ञानसे मोक्ष मिलता है ऐसा कणाद मुनिकी मान्यता है,
आगे द्रव्यादि सात पदार्थोंका समर्थन किया गया है. उसमें. पहिले ९ द्रव्य बताएं गये हैं "पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाश कालदिगात्म मनांसि नवैव" पृथ्वी वगैरह प्रत्यक्ष विश्व और

(४-५१) न्याय दर्शन. वाङ्मयः (१) (आध्यात्मिक आत्मा मन भी हैं)
((६))

५१ न्यायसूत्र- यह गोतम मुनिका प्रणीत है, इसका प्रारम्भ "प्रमाण प्रमेय. इत्यादि- यह सोलह पदार्थ वादी ग्रन्थ है, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और शब्द ये चार प्रमाण इसमें माने गये हैं, केवल शब्दको प्रमाण मानते हैं, जो वेदको प्रमाण मानते हैं. वह शब्द आप्त वाक्यरूप है. वह आप्त यथार्थवक्ता है, यह वेदप्रमाणवादी के लिये भी मान्य है. क्योंकि वेदोंका प्रकाशक ईश्वर है, वह ईश्वर, सबका आप्त है, इसीसे उस ईश्वरमें आप्तत्व लक्षणका समन्वय होता है,

(६) (४-५२) न्यायदर्शन - वस्तुविज्ञान-(२)

५२ न्यायसूत्र- इस सभी दर्शन शास्त्रोंमें आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिसे मोक्ष ही प्रधान ध्येय माना गया. वह भी तत्त्वज्ञानसे ही होता है यह भी सबको मान्य है, "दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायात् अपवर्गः" यह न्याय दर्शनमें प्रधान सूत्र है इसका उल्लेख श्री शङ्कराचार्यजीने अपने शारीरिकभाष्यमें उदाहरण प्रमाणके लिये दिया है. वह भी अन्तमें मिथ्या ज्ञानको नाशसे मोक्ष मिलता है इसके बारेमें बताया गया है, इत्यादि. इसी षड् दर्शन शास्त्रोंमें सिद्धान्त दर्शन भी एक है. जो कि "सर्वतन्त्राना प्रवासः" इस-

(४-५३) धर्मशास्त्र- वाङ्मय (१)

५३ धर्मशास्त्र-स्मृति-ग्रन्थ- यह धर्मशास्त्र स्मृति ग्रन्थ माना गया है, वेदरूप-श्रुतिका- वह दूसरा स्थान है,
"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः" (मनुस्मृति अ-२, ।)
यह धर्मशास्त्र चौदह विद्यामें एक है, "पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः"
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश" पुराण वगैरह ४, (६) वेदाङ्ग, ४ वेद ऐसे
चौदह प्रमाण ग्रन्थ लिया और धर्मका आश्रय स्थान है,
उस धर्मशास्त्रके रचने वाले मन्वादि अनेक ऋषि है,
"मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः। यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायन-
बृहस्पती। पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ। शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्र
प्रयोजकाः" ये मनु वगैरह बीस ऋषि धर्मशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य हैं और भी है
"चतुर्विंशतिमत" तथा अष्टाविंशति मत" संग्रह नामके ग्रन्थ में उनका उल्लेख है,

(४-५४) धर्मशास्त्र- वस्तुविज्ञान- (२)

५४ धर्मशास्त्र - इसका तत्त्व है आहार विहार वगैरह विषयों को प्रारम्भ करके सभी
व्यवहारों में और उपनयन विवाह वगैरह सभी संस्कारोंमें इस धर्मशास्त्रके ज्ञानकी
आवश्यकता है, उसी तरह व्यवहाराध्याय में कोर्ट कचहरी वगैरह कार्योंका ज्ञान भी
जरूरी है, तथा प्रायश्चित्त वगैरह में दण्डनीतिमें भी धर्मशास्त्र प्रमाण है, इतना ही नही
आदमी मरने के बाद भी अन्त्येष्टि से प्रारंभ करके आगे करने योग्य अपर कर्म और
पैतृक श्राद्ध वगैरह कर्म भी इसी में है,
इसी प्रकार- "गीताधर्म" माने ज्ञान, उपासना, (भक्ति) और कर्म इन तीनोंका योग जिसमें है
समत्वभावसे समर्थित है, उस समत्वयोगका ग्रन्थ भी इस स्मृतिग्रन्थमें ही माना गया है,
इसीलिए ब्रह्मसूत्रमें "स्मृतेश्च" अपि च स्मर्यते, वगैरह सूत्र प्रसिद्ध ही है.
गीता में १८ अध्याय हैं, ७०० श्लोक है, यह स्मृति भी वेदप्रमाण वादी मानी गई है,

"उपवेद॥(४)

(४-५५) ऋग्वेदका उपवेद-आयुर्वेद- वाङ्मय (१)

(१)
५५ आयुर्वेद- यह ऋग्वेदका उपवेद है, उसमें "चरकसंहिता, सुश्रुत, अष्टांगहृदय
नामके अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, वे चरकाचार्य सुश्रुत वाग्भट" इन आचार्योंके बनाये
हुए हैं, उनमें निदान चिकित्सा वगैरह अनेक प्रकरण भी हैं. अष्टांग हृदयमें आठ प्रकरण
अलग अलग विभागसे ही बनाए गये हैं, यह श्लोक बद्ध है. चरकसंहिता गद्यरूप है,
माधव निदान" यह माधवाचार्यका ग्रन्थ है. इसमें केवल रोगोंका निदान मूलकारण ही)

(४-५६) आयुर्वेद- तत्त्वज्ञान - (२) (बताया गया है. श्लोकसं.)

(१) "सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः। सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्"
५६- आयुर्वेद - इस श्लोकके अनुसार उस इष्ट सुखके लिये धर्म ही कारण है (अ-हृ- श्लोक)
ऐसा सिद्ध होता है, इसीसे धर्म के सम्बन्धसे यह आयुर्वेद ही ऋग्वेदका उपवेद माना गया है।
इसमें नैसर्गिक चिकित्सा, आधिभौतिक-दैविक- आध्यात्मिक चिकित्सा - कायिक-वाचिक और
मानसिक चिकित्सा, प्राणचिकित्सा, मान्त्रिक चिकित्सा वगैरह मूलतः ऋग्वेदमंत्रोंमें ही
छिपी हुई है। चिकित्साके रूपसे उपवेद माना गया है, उसी प्रकार कुछ अथर्व
वेदमें भी वनस्पति की चिकित्सा कही गई है,

(२) (४-५७) यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद" वाङ्मय(१)

५७ धनुर्वेद- यह यजुर्वेदका उपवेद है, इसका भी अलग ग्रन्थ है, पर भी यजुर्वेदमें
(सेकडों- हजारों जगह पर इस विद्याका झलक दिखता है, यह क्षत्रियों के लिये प्रधान है,
जिस विद्याको श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणने विश्वामित्रसे प्राप्त की थी, जिससे-
जनकके विवाह मंडपमें शिवधनुको नमाया था, और सीताको पाई थी, और परशुरामके
साथ धर्षणसे विजयी बन कर राम: शस्त्रभृतां वर:" ऐसी पदवी पाई थी, बाद
अन्तमें दशमुख रावणकी विजयसे रामराज्यकी स्थापना की थी,
उसी तरह नरवीर अर्जुनने भी रुद्रसे गांडिव धनुको पाया था, और उसी से मत्स्यवेध
करके द्रौपदीको पाई थी. आगे- कौरव के वंशको वध करके भारतमें धर्मराज्यकी
स्थापना कीथी, यह सभी धनुर्विद्याके सहायसे ही किया गया था. ~~इसमें योगविद्या~~
~~और अध्यात्म विद्याका भी योग है, और ब्रह्म क्षत्र तेजके मित्रावरुण देवताओंका भी तत्त्व है,~~

(४-५८) धनुर्वेद- तत्त्व ज्ञान-(२)

(२)

५८ धनुर्वेद- इसमें बाह्य भौतिक दृष्टिसे केवल क्षात्रतेजका योग दीखता है,
वह भौतिक बल भी हो सकता है, लेकिन इसीके साथ दैविक और आध्यात्मिक
शक्तिकी भी आवश्यकता है, इसी कारणसे- इस विद्यामें भी वैदिक और तांत्रिक-
मन्त्रोंका भी आश्रय लेना अनिवार्य ही है, और इसमें आन्तर्य योगविद्याका भी
सम्बन्ध है, और अध्यात्म विद्याका भी योग है, तथा ब्रह्म क्षत्र तेजके मित्रावरुण
देवताओंका योग भी आवश्यक है, अध्यात्मतत्त्वसे "चक्षु और मन" की ज्ञानशक्ति-
और क्रियाशक्ति का योग भी अनिवार्य ही है, वह केवल बाहरके धनुसे नहीं
सिद्ध हो सकता है. किंतु- आन्तर्य अभ्याससे प्रक्रिया योगसे ही मिल सकता है.

(४-५९- सामवेदका उपवेद- गान्धर्व वेद- वाङ्मय(१)

(३)

५९ गान्धर्व वेद- यह संगीत शास्त्रका मूल है, उसीमें सामगानकाभी विधान बताया गया है,
उसमें "प्रकृतिगान विकृतिगान, ऊहगान, रहस्य गान," ऐसे अनेक भेद भी है,
प्रस्ताव, प्रतिहार, उद्गीथ, उपद्रव, निधन" ऐसे पांच प्रकारके साम गान हैं,
नारदीय शिक्षा-ग्रन्थ प्रसिद्ध है इन गायनों का उपदेश किया गया है - उसमें- २ प्रपाठक हैं
१६ खंड हैं. उसीमें आधुनिक संगीतविद्याकी शिक्षा भी दिखाई गई है,

(३) (४-६०) गान्धर्व वेद- वस्तुज्ञान(२)

६० गान्धर्ववेद- इसका तत्त्व बहुत ही गूढ है, वह ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस साम गाता हुआ
रहता है, वह समताभावका गान ऐसा है, मैं अन्न हूं मैं अन्न खानेवाला हूं, मैं श्लोकरूप मंत्रोंका
कर्ता हूं, मैं सत्यवस्तुसे प्रथम पैदा हुआ हूं, देवोंके भी पहले अमृतका मूलस्थान हूं,
मैं अन्न खानेवालेको मैं खाता हूं, अर्थात् मैं अभोक्ता होनेके कारण सभी भक्ताओंका भी
भोक्ता हूं, मैं इस सारे भुवनमें भरा हूं, जैसे कि आकाशमें ज्योति भरा हुआ है,
जो ऐसा जानता है वह भी ऐसाही होगा- यही गायनका तत्त्वविज्ञान है, अनुभवैह,

(४-६१) अथर्ववेदका उपवेद- आगमतंत्रशास्त्र वाङ्मय(१)

(४)

६१ आगम तन्त्रशास्त्र- यह अथर्व वेदका उपवेद है। देवताओंकी पूजाके लिये पत्थर, स्फटिक, सोना, चांदी, तांबा, पञ्च धातु, मिट्टी, और लकड़ी वगैरह पार्थिव धातुओं मूर्ति बनाई जाती है। और उसमें प्राण प्रतिष्ठा की जाती है, वह सभी इस आगम में और तंत्र शास्त्रमें बताया गया है। वे ग्रन्थ वातुलागम, वैखानसागम, पञ्चरात्र आदि प्रसिद्ध हैं। तन्त्रशास्त्रके मेरुतन्त्र ज्ञानार्णव तन्त्र, वामकेश्वरतन्त्र वगैरह नामसे प्रसिद्ध हैं, उन में ~~अनेक~~ दुर्गा त्रिपुरसुन्दरी काली वगैरह शक्ति देवताओंके, और गणपति शिव विष्णु वगैरह पुरुष देवताओंके भी पूजादि विधानके अनेक ग्रन्थ हैं, उसीमें "मंत्र- यन्त्र- तन्त्र" ऐसे तीन प्रकार हैं। मंत्र देवताओंसे प्रत्यक्ष संबद्ध है, यंत्र- भावना प्रधान है, तन्त्र- क्रिया प्रधान है, इन तीनोंसे युक्त ही पूर्ण है।

(४-६२) आगमतन्त्रशास्त्र- वस्तु विज्ञान (२)

६२ आगम- तन्त्रशास्त्र-का तत्त्व- और उसका ज्ञान- उन देवताओंकी मूर्ति में और यन्त्रों में प्राण प्रतिष्ठाके बिना उनमें देवतात्व सिद्ध नहीं हो सकता है, तब किई हुई पूजा केवल पत्थरकी ही पूजा हो जाती है, अर्थात् वह फल देने में असमर्थ निरर्थक ही हो जाती है, उसीसे लोगों को उसमें अश्रद्धा पैदा होती है, उससे लोग उस पूजाको और देवताओंको छोड़ भी देते हैं, यह आजकल प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, उसी कारणसे तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता है;

वह प्राण प्रतिष्ठा भी अपने ही प्राणसे करनेका विधान है। "मम प्राणा इह प्राणाः मम जीव इह स्थितः। मम प्राणेन्द्रियाणि। वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्र घ्राणप्राणाः सर्वे इहागत्य यथासुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा" मेरे प्राण ही इस मूर्ति में प्राण है। अत वे वाणी वगैरह सभी इन्द्रियशक्तियोंके साथ यहां पधारकर इस मूर्ति में चिरकालतक स्थिर रहे। इत्यादि

(४-६३) इतिहास-पुराण- वाङ्मय (१)

६३ इतिहास-पुराण- प्राचीन कालके युगान्तरमें जो (बीत) जो बातें गई होंगी उन विषयों को (रोचक और रूपक कथानकके रूपसे वर्णन करके समझाने के लिये जिस ग्रन्थमें बताया हो वही इतिहास माना गया है। जैसे कि- महाभारत वगैरह ग्रंथों में अनेक बातें सुननेमें आती हैं, उनमें प्रायः भूतकालके परोक्षार्थक लिट् लकारका प्रयोग किया गया है, जैसे- गीतामें श्रीभगवान् उवाच। अर्जुन उवाच" वगैरह प्रयोग है, अर्जुनने कहा था रे ऐसे सुननेमें आता है, वह परोक्ष होनेके कारण लिट् प्रयोगसे ही बोलना पड़ा, +

~~(४-६४) इतिहासपुराण- वस्तुविज्ञान (२)~~

~~६४- इतिहास- पुराण-~~

+ (उसमें इतिह आस" ऐसा था रे," यह ऐतिह्य प्रमाण माना गया है, जिसको प्राचीनकालसे केवल सुनते ही आते है, "जैसे कि इह वृक्षे यक्षोऽस्ति" इस पेड़में यक्ष है- इसको ऐतिह्य बोलते हैं, "श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यम् अनुमानश्च तुष्टयम्। (तै. आ.)" "श्रुति- प्रत्यक्ष, ऐतिह्य अनुमान" ये चार प्रमाण शास्त्रमें सिद्ध है।

इन इतिहास पुराणों से जनताके दिलमें वेदका गौरव बढ़ाना ही प्रधान उद्देश है, "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुप बृंहयेत्" पुराण ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है

१८ पुराण १८ उपपुराण- इत्यादि.

(४-६४- इतिहासपुराण- तत्त्वविज्ञान (२)

६४- इतिहास पुराणका तत्त्वज्ञान, त्रेता युगकी बात है कि- रामायणमें श्रीरामचंद्रजी एकपत्नी व्रती थे, उनको सीता एकही पत्नी थी, द्वापर युगमें महाभारतके इतिहासमें तो द्रौपदी एक ही स्त्रीको पांच पांडव पांच पति थे, इसप्रकार एक औरतको पांच पतिका उल्लेख किसीभी इतिहासमें नहीं है, इसमें वस्तुतः इसका तात्त्विक अर्थ जाननेकी जरूरी है, वेदव्यासजीके विरचित इस इतिहासमें झूठी बात होनही सकती है, उन्होंने तो वेदका तात्त्विक गूढ अर्थ समझानेके लिएही लिखा है, इस लिये विद्वान्‌लोग इसका खोज करें, मेरी रायसे। और वेदमंत्रके प्रमाणसे - एकही रुद्रभगवानके पांचमुखी पशुपतिके पांचमुखोंके तत्त्वसे इस भूमिमें पैदा हुए ये पांच पाण्डव हैं, धर्मराज, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव" नामोंसे प्रसिद्ध है, जो द्रौपदीके पांचपति बने थे, ये वैदिक सिद्धान्तासे एकही रुद्रके तत्त्वसे युक्त पांच पुरुष हैं, उनमें

(द्वैत पत्नीयो मेते उद्योगि आवे ब्रवि है मत्य मेलिरहैं?)

(१) धर्मराज यमका पुत्र है, वह यम नियन्ता कालाग्नि रूप है, जोकि पराशरके ऋद्र मन्त्रादर्शनमें स्तुत है, "यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्॥ (ऋ. मं. १।६६।८) (२) भीम- वायुका लड़का है, वायु (मरुत्) रुद्रका पुत्र है, "आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु" हे मरुतां पितः" ऐसा रुद्रका संबोधन है, (३) अर्जुन- इन्द्रका पुत्र है, वह इन्द्र मध्यमलोकरूप अन्तरिक्षका अधिपति है, उसी अन्तरिक्षका अधिपति एकादशरुद्रभी होनेके कारण रुद्रका सत्त्व- इस इन्द्र पुत्र अर्जुनमें सिद्ध है, (४-५) नकुल और सहदेव ये दोनोभी वेदमंत्रमें रुद्रनामसे ही सुनाए गये हैं, "वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता (ऋ.मं.१।१५८।१) उसीतरह "रुद्रवर्तनी" रुद्रके मार्ग के हैं "आयातं रुद्रवर्तनी" (ऋ.१।३।३) इसप्रकार इन पांचोंका स्वरूप रुद्रके तत्त्वसे सिद्ध है, इसमें पुराणकाभी प्रमाण मौजूद है अस्तु- अम्बिका- पार्वती- का इतिहास- ह.१

२ (अम्बिकाका उप- पति देह पार्वतीका मनेत् कैसा पद भजनें पर्वतमें अवतरण)

इसी प्रकार- और एक विशिष्ट तत्त्वका इतिहास है, जोकि मधुविद्याके उपदेशके सिलसिलेमें बृहदारण्यक उपनिषत् में उपदिष्ट है, वह मूलतः ऋग्वेदके मंत्रोंमेंही निर्दिष्ट माना गया है, वही प्रमाणके लिये सुनाया गया है, उसीका यह रूपक दृष्टिसे बताया गया है, एक बार अश्विनी देवोंने ~~दधन्चके~~ दधीचि आथर्वण ऋषिसे पूछा था कि- तुम मधुविद्या जानते हो, उसका उपदेश करो, नही तो वह गुप्त ही रह जाएगी, तब उन्होंने उसका निराकरण कियाथा, उसका कारण कि - इन्द्रका वचन, इस मधुविद्या अगर किसीको बताओगे तो तेरा सिर काट डालूंगा, यह सुनकर उस ऋषिका सिर काटकर उसको घोड़ेका मुख लगाया, उस घोड़ेके मुखसे उन्होंने मधुविद्याका उपदेश दिया, यह समझकर इन्द्रने उसका सिर काट दिया, तब अश्विनोंने उसको पहले काटके रखा हुआ मुख फिरसे उसको लगादिया, यह इतिहास महाभारतमें भी प्रसिद्ध है,

मूलतः यह ऋग्वेदमंत्रमें ही है; बृ. उपनिषत् मे प्रमाणके लिये दिया गया है,

"तद्वां नरा सनये दंस उग्रम् (ऋ. १।११६।१२) "आथर्वणायाश्विना दधीचे॰ (ऋ. १।११६/२२)
"रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव॰ इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश
इसका आख्यान बृ. उपनिषत्‌में है,) (ऋ. ६।४७।१८)
"अयं वै हरयोऽयं वै दश च शतानि च सहस्राणि च बहूनि चानन्तानि च,

"तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम् अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः इत्यनुशासनम्" (बृ.उ.)

वह यह इन्द्र है, यह पूर्व और अपर से रहित है, आन्तर्य और बाह्य से रहित है अर्थात इस संकुचित मर्यादासे मुक्त है, वही यह आत्मब्रह्म है, जो कि सबोंके अन्दर चेतनाके स्फुरणसे सर्वानुभव सिद्ध है, यही वेदका अनुशासन है,

॥ इति- चतुर्थी कला ६४ मणिमाला पीठिका ॥
सम्पूर्णा

इति- देवरातः

ता. ९-१२-७२- पूज्य गुरुम् पञ्चमी- मंगलवारोज

समर्पाक्रियागया-